शोषण का दस्तावेज-'जूठन'

डॉ. सुमित्रा महरौल

दलित जीवन की पीड़ा, उन के शोषण, उन पर होने वाले अत्याचारों, उन के अन्र्तमन पर पड़ने वाले हजारों दंशों की अभिव्यक्ति है आत्म कथा जूठन। लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखी गई उनकी आत्मकथा। इस कृति में न केवल वाल्मीकि समाज के परिवेश आचार-विचार, विश्वास, मान्यताओं, पूजा, पद्धतियों, रहन सहन संस्कारों इत्यादि का जीवन्त वर्णन है अपितु इस वर्ग के प्रति सवर्ण समाज की सोच और व्यवहार का प्रामाणिक चित्रण उपलब्ध है। सदियों से यह वर्ग न केवल समाज के अन्य वर्गों के शोषण को सह रहा है अपितु अनेक स्थानों पर तो ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें मनुष्यता के दायरे से भी बाहर रखा जा रहा है। पेड़ पौधों जानवरों तक को पूजने वाला भारतीय समाज अपने पूर्वाग्रहों, संस्कारों एवं सामाजिक आग्रहों के कारण इस जाति के प्रति चरम सीमा तक असहिष्णु है, यह एक अजीब विडम्बना हैं। किन्तु सम्पूर्ण घृणा, तिरस्कार, अस्वीकार के बाद भी सवर्ण समाज इस वर्ग से सरोकार रखता है क्योंकि घृणित एवं

गर्हित कार्यों के लिए, खेतों में बेगार के लिए एवं सेवा कार्यों के लिए उन्हें इस वर्ग की आवश्यकता है। दलित वर्ग सवर्ण समाज के सुखसुविधा जुटाने का उपकरण मात्र है। इन उपकरणों की अनुपस्थिति में सवर्ण समाज का जीवन सुचारू रूप से चल पाएगा-यह असम्भव है। जूठन में एक स्थान पर उल्लेख है कि सवर्ण समाज के किसी व्यक्ति का गाय, बैल या भैंस जब मर जाता था तो उसे उठा कर दूर फेंकने का काम इस जाति को ही करना पड़ता था। इस काम के बदले किसी मेहनताने का सवाल ही नहीं उठता था। मेहनताने के बदले में मिलती थी गालियाँ, अपमान, तिरस्कार व दुत्कार। इतने श्रमसाध्य काम के बदले कृतज्ञता के स्थान पर गालियां यह एक अजीब विसंगति है।

गांव में आयोजित किसी समारोह में काम काज करने का पूरा अधिकार दलितों को है किन्तु बदले में कृतज्ञता या आदर पाना तो दूर की बात है समारोह में बनने वाले भोजन तक पर उनका अधिकार नहीं है। ‘‘सुखदेव त्यागी की पुत्री के विवाह के अवसर पर दस-बारह दिन पहले से माँ-पिता जी ने घर आंगन से लेकर बाहर तक के अनेक काम किए थे। गाँव भर से चारइपायां ढो-ढोकर जनवासे में इकट्ठा की

थी पिता जी ने,''[1] किन्तु विवाह के अवसर पर सबके खाना खा चुकने के बाद जब करूण स्वर में माँ ने बच्चों के लिए थोड़ा खाना देने की गुहार लगाई तो सुखदेव त्यागी गुस्से से आग बबूला हो गये -'टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है .... ऊपर से जाकतों के लिए खाता मांग रही है, अपनी औकात में रह चूड़ी''[2] कहकर इस वर्ग के प्रति अपनी असीम घृणा और आक्रोश का प्रस्फुटन किया और ऐसा नहीं है कि यह मानसिकता अशिक्षित कूपमंडूक ग्रामीण समाज की हो तथाकथित उच्च शिक्षा प्राप्त वर्ग भी अपने पूर्वाग्रहों और संस्कारों के कारण इनके प्रति असंवेदनशील, क्रूर व असहिष्णु है।

शिक्षकीय अत्याचारों के वर्णन से पूरी आत्मकथा भरी पड़ी है। यह विडंबना ही है कि शिक्षित होने के बावजूद सवर्ण पूर्वाग्रहों एवं सामाजिक संस्कारों के कारण इस वर्ग के शोषण में एक मुख्य भूमिका निभाते हुए दिखाई देते हैं!

उनकी शिक्षा का क्या औचित्य है जो उन्हें पूर्वाग्रहों से मुक्त न कर सके, उनकी संवेदना का विस्तार न कर सके, स्वस्थ समाज के निर्माण में उनकी भूमिका का उन्हें अहसास न करा पाए। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को अनेक बार शिक्षकों के भेदभाव का सामना करना

पड़ा था। वास्तव में सवर्णों से संबंध रखने वाले यह शिक्षक यह चाहते ही नहीं थे कि दलित वर्ग शिक्षित हो अपनी चेतना का विस्तार करें, यदि ऐसा हो गया तो उनकी सुख सुविधा के सरंजाम में मुख्य भूमिका निभाने वाले इस वर्ग से मुफ्त में काम करवा पाने में वह सफल नहीं हो पाएंगे। वर्णगत मिले संस्कारों के कारण इस स्थिति को स्वीकार करने में उन्हें मानसिक पीड़ा होगी वह अलग। श्रेष्ठता ग्रन्थि से वह इस सीमा तक आक्रान्त है कि योग्यता, मानवीयता, समानता जैसे भावों को तो वह पास में फटकने तक नहीं देते, तभी तो हेडमास्टर तक इतना क्रुर हो जाता है कि वह प्राइमरी में पढ़ने वाले बालक ओमप्रकाश को पढ़ाने की बजाए पूरे स्कूल में नित्य झाड़ू देने के काम पर लगा देता है। पिता द्वारा विरोध करने पर उन्हें दुत्कार कर भगा देता है। आश्चर्य होता है छोटे से बालक के प्रति उसकी संवेदन शून्यता पर। वास्तव में उसकी वर्णगत श्रेष्ठता उसे यह स्वीकार करने से रोकती है कि एक शूद्र का पुत्र पढ़ लिख कर अपना व अपने वर्ग का किसी प्रकार का कोई भला कर पाए! एक अन्य स्थान पर यही प्राइमरी का मास्टर वर्ग चौथी कक्षा के निरीह बालक सुक्खन सिंह के पेट पर वहीं घूँसा मारते है जहाँ उसे फोड़ा निकला हुआ था। वह बालक असह्य

वेदना से तड़पकर रो उठता है उसकी वेदना से द्रवित हो बालक ओमप्रकाश का भी रूदन फूट पड़ता है।

एक अन्य स्थान पर निर्दोष सुरजन की शिक्षक द्वारा पिटाई का वर्णन द्रष्टव्य है - ''वे सुरजन को बेरहमी से पीट रहे थे। लगता ही नहीं था एक अध्यापक अपने छात्र को सजा दे रहा है।''[3] विद्यालय में इतना अधिक भेदभाव था कि दलित बालक को नाम से पुकारने की बजाए जाति से पुकारा जाता था। साथ में पढ़ने वाले विद्यार्थी ही नहीं अपितु शिक्षक तक निरीह अबोध, मासूम दलित बालकों के आत्मविश्वास को रौंद उन्हें उनकी हीन जाति से पुकारते थे..... ''अबे साले चूहड़े की औलाद''।[4]

शिक्षकों के द्वारा रचा गया षडयंत्र केवल शोषण व प्रताड़ना के स्तर पर ही नहीं था अपितु शिक्षकीय कर्त्तव्यों के निर्वाह में भी वह पूरा भेदभाव बरतते थे। तभी तो मास्टर ब्रिजपाल ओमप्रकाश जी को बारहवीं कक्षा में रसायन के प्रैक्टिकल में जानबूझ कर बैठने नहीं देता व पूरा साल छल से प्रयोगशाला से दूर रखता है। तटस्थ दृष्टिकोण अपना कर प्रिंसिपल भी इस छल में उसका साथ देता है। परिणामस्वरूप ओमप्रकाश रसायन शास्त्र के प्रेक्टिकल में फेल हो जाता है, उसका पूरा

भविष्य दाव पर लग जाता है। यही मास्टर ब्रिजपाल शिक्षकीय मदद करने का वादा कर उससे अपने घरेलू कार्य करवाता है। एक अन्य शिक्षक योगेन्द्र त्यागी कक्षा में बालक ओमप्रकाश को घृणित तरीके से अपमानित करते है व सम्पूर्ण कक्षा के समक्ष उसे उपहास का पात्र बना देते हैं..... ''कोई गलती हो जाने पर पीटने के बजाए मेरी कमीज पकड़ कर ऐसे खींचते थे कि कमीज अब फटी..... मेरा पूरा ध्यान अपनी कमीज पर रहता था। अपनी ओर खींचते हुए पूछते..... सूअर की कितनी टांगे खाई हैं''[5]..... मास्टर साहब की बातें सुनकर पूरी कक्षा हंसने लगती थी दलित बालक को विद्यालय में ना घड़ा छूने का अधिकार था न हेन्डपम्प। प्यास लगने पर उन्हें दूसरों के रहमों करम पर रहना पड़ता था। कोई आए और ऊपर से पानी डालकर ओंक से उन्हें पिलाए। यदि यह बालक साफ कपड़े पहनकर जाएं तो भी उन्हें सहपाठियों की छींटाकशी का सामना करना पड़ता था व यदि मैले कपड़े पहनकर जाएं तो भी..... ''अबे चूहड़े के दूर हट, बदबू आती है।''[6] ऐसे शोषित प्रताडित दमघोटू परिवेश में लेखक ने अपनी शिक्षा अर्जित की थी।

ग्राम्य जीवन की व्यवस्था कुछ ऐसी बन पड़ी है कि दलित वर्ग समस्त परिवार के साथ श्रम साध्य घृणित काम में लगा रहने के

उपरांत भी दो जून की दाल रोटी की व्यवस्था नहीं कर पाता। कारण यह है कि इन्हें श्रम के बदले अत्यंत न्यूनतम मजदूरी दी जाती है जूठन में उल्लेख हैं.... "प्रत्येक तगा के घर में दस से पन्द्रह मवेशी सामान्य बात थी। उनका गोबर उठाकर गाँव से बारह कुरंडियाँ पर या उपले बनाने की जगह पर डालना होता था। सर्दी के महीनों में यह काम बहुत कष्टदायक होता था...." ‘‘इतने दिनों में दालानो में भरी दुर्गंध में से गोबर ढूंढ ढांढ के निकालना बहुत तकलीफ देय होता था, दुर्गन्ध से सिर भन्ना जाता था। इतना घृणित, गर्हित काम करने के बाद मजदूरी मिलती थी, दस मवेशी वाले घर से साल भर में लगभग 12-13 किलो अनाज! त्यागियों के खेतों में मजदूरी की - एक पूली में एक किलो से भी कम गेहूँ निकलते थे। यानि दिन भर की मजदूरी एक किलो गेहूँ से कम।’’[7]

यही नहीं इस वर्ग से बेगार भी ली जाती थी अर्थात् अपना काम करवा कर मजदूरी न देना। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के दसवीं के इम्तहान से एक दिन पहले गाँव का फौज सिंह त्यागी उसे जबरन पकड़ कर ले जाता है व बगैर इसका ख्याल किए कि अगले दिन उसकी परीक्षा है उससे दोपहर भर फसल कटाई का काम लेता है। गाँव

में एक बार जब बेगार के विरुद्ध चेतना जागृत हो रही होती है तो सवर्ण गाँव वाले पुलिस के साथ मिल निर्दोष, निरीह, दुर्बल, दीन दलित वर्ग के लोगों को पकड़ कर ले जाते है व उन पर अमानवीय पुलिसिया कहर ढ़ाते हैं-''बस्ती से पकड़कर लाए लोगों को मुर्गा बनाकर लाठियों से पीटा जा रहा था..... बस्ती के किसी व्यक्ति में इतनी हिम्मत नहीं थी जो दरोगा से पूछ सके कि उन्हें क्यों पीटा जा रहा है? क्या कसूर है उनका"

इस प्रकार के अनेक अमानुषिक, असंवेदनशील चित्र इस आत्मकथा में आए हैं।

अब बात आती है स्थिति में सुधार परिष्कार की। स्थिति में सुधार के लिए सर्वाधिक आवश्यकता है इस वर्ग में शिक्षा के प्रचार प्रसार की। शिक्षित होने के उपरान्त उनमें अपनी दशा के प्रति चेतना उत्पन्न होगी। अपनी स्थिति का विश्लेषण कर, शोषण का विरोध करने की हिम्मत व आत्मविश्वास इस वर्ग में जागृत होगा। समाज को भी इस वर्ग के प्रति अपनी सोच बदलनी चाहिए।

आम धारणा है कि समाजशास्त्र समाज को समझने का सशक्त माध्यम है। समाजशास्त्र की अवधारणा, उपागम और निष्कर्ष पाश्चात्य

समाजदर्शन पर आधारित है, तो भारतीय समाज का प्रामाणिक ज्ञान उससे किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। स्वदेशी समाजशास्त्र का आधार इतिहास, धर्मशास्त्र और साहित्य है, जिसमें दलितों का न तो उचित प्रतिनिधित्व है और न ही महत्त्व। इसलिए समाजशास्त्र के माध्यम से दलित समाज ..... सही समझ नहीं विकसित की जा सकी है।

अकारण नहीं कि इस समाज के विकास के लिए बनी सरकारी योजनाएं फलीभूत नहीं हो पा रही हैं। ऐसे में दलित आत्मकथाओं के माध्यम से जो सच निखरकर आ रहा है, उसे देखने और समझने की जरूरत है।''[8]

'जूठन' जातिगत उत्पीड़न और अतिदलित समाज के संघर्ष का आख्यान है। यह आत्मकथा नहीं अतीत की घटनाओं और पीड़ादायी अनुभवों से उपजी कराह है, जहां यातनामय भयावहता के साथ लेखक ही नहीं समय-समाज भी उपस्थित है।[9]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' की तीन विशेषताओं की मैं चर्चा करना चाहूंगा। मैं पहले से ही कहता आया हूँ कि ललित भाषा में दलित साहित्य नहीं लिखा जा सकता है क्योंकि दलित अपने

जीवन में सदियों से जिस भाषा को सुनते और सहते चले आ रहे हैं, उसी भाषा में उनकी ज़िंदगी की हकीकत, उनकी ज़िंदगी की समस्याएँ और ज़िंदगी की संवेदनाएँ प्रामाणिक रूप से व्यक्त की जा सकती हैं।

वैसी भाषा, सच कहने का साहस और एक विशेष रचाव को विकसित करने की कोशिश उनकी आत्मकथा 'जूठन' में है। इसीलिए जब वो आत्मकथा आई थी तो उसने लेखकों का ध्यान अपनी ओर खींचा। असल में दलित साहित्य हिन्दी में एक आंदोलन के रूप में थोड़ी देर से शुरू हुआ। मुख्य रूप से 1990 के बाद यह शुरू हुआ। उसमें जो प्रतिभाशाली लेखक थे, उनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि सबसे आगे थे।

इन लेखकों की रचनाशीलता की गुणवत्ता के कारण वो मुख्यधारा के समांतर धारा के रूप में स्थापित हुआ और उसे स्वीकार भी किया गया। एक व्यक्ति के रूप में ओमप्रकाश वाल्मीकि बहुत ही सहज, निर्भीक और साहस के साथ अपनी सोच-विचार का सच कहने वाले व्यक्ति थे।[10]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जूठन (आत्मकथा), लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 24.
2. वही, पृ. 25.
3. वही, पृ. 16.
4. वही, पृ. 17.
5. वही, पृ. 27.
6. वही, पृ. 15.
7. वही, पृ. 19.
8. गद्य कोश, (लेख) दलित समाज और जूठन, लेखक-चंद्रभान सिंह यादव
9. सेतु (पत्रिका) दिसंबर 2017, एक दलित की आत्मकथा - लेखक आनंद दास
10. ओमप्रकाश वाल्मीकि जी पर मैनेजर पांडे के विचार (स्रोत बीबीसी इंडिया साक्षात्कार)

एसोसिएट प्रोफेसर
श्याम लाल कॉलेज (सांध्य)
पता डी-160, ग्राउंड फ्लोर, रामप्रस्थ कॉलोनी,
गाजियाबाद, 201011 (उत्तर प्रदेश)
मो. 9650466938